भारतीय ज्ञान परंपरा में शिक्षा के समाजशास्त्रीय आधार

सम्पादक :
डॉ. दिनेश चन्द्र शर्मा

भारतीय ज्ञान परम्परा में शिक्षा के समाजशास्त्रीय आधार

सम्पादक :

डॉ. दिनेश चन्द्र शर्मा

Ph.D., D.Lit. (Sub.)

निदेशक, कॉम्पिटिशन प्लस ग्रुप ऑफ इन्स्टीट्यूशन,
अजमेर

छवि पब्लिकेशन्स

अजमेर–305001

प्रकाशक :

छवि पब्लिकेशन्स

अजमेर-305001

मो. 9660111549

संस्करण :

प्रथम 2024

ISBN : 978 - 81 - 89435 - 66 - 0

मूल्य - 300/-

रचना - भारतीय ज्ञान परम्परा में शिक्षा के समाजशास्त्रीय आधार

सम्पादक - डॉ. दिनेश चन्द्र शर्मा

मुद्रक - श्रीनिवास प्रिन्टोग्राफिक्स, अजमेर

आचार्य शंकर और स्पिनोजा के दर्शन में परम तत्व

डॉ. किरन भदेरिया
सहायक आचार्य (समाज विज्ञान विभाग)
हुकुमचन्द नोबेल इंस्टीट्यूट ऑफ साईंस एण्ड टेक्नोलॉजी, अजमेर

सामान्य मनुष्य का दृष्टिकोण जगत के प्रति वस्तुवादी होता है। वह जो कुछ अपनी आँखों से देखता है और इन्द्रियों से अनुभव करता है, उसी को सत्य मानता है। दृश्य जगत की वस्तुएँ उसके लिए वास्तविकता का प्रतीक होती हैं। इन्द्रियातीत सत्ता को वह मान्यता नहीं देता। यही कारण है कि अधिकतर लोग प्रत्यक्ष जगत को ही पूर्ण सत्य मानते आए हैं। आचार्य शंकर के अनुसार परम तत्व ब्रह्म है। ब्रह्म शाश्वत, अजन्मा, अविनाशी और निर्विकार है। वह न तो कभी उत्पन्न होता है और न ही नष्ट होता है। आत्मा का वास्तविक स्वरूप भी वही ब्रह्म है। आत्मा मूल रूप से न तो बंधन में पड़ती है और न ही उसे मुक्ति की आवश्यकता होती है, क्योंकि वह पहले से ही शुद्ध और स्वतंत्र है। बंधन और मोक्ष केवल अज्ञान और ज्ञान की अवस्थाएँ हैं। शंकर के मत में जगत ब्रह्म की माया है। दृश्य वस्तुएँ केवल आभास हैं, वे नित्य और सत्य नहीं हैं। सत्य वही है जिसकी सत्ता कभी परिवतिज़्त नहीं होती, और वह है ब्रह्म।

स्पिनोजा का दर्शन भी एकत्ववाद पर आधारित है। उसने कहा कि जगत में केवल एक ही सत्ता (Substance) है, जिसे वह ईश्वर या प्रकृति कहता है। ईश्वर और प्रकृति उसके लिए अभिन्न हैं। जो कुछ इस जगत में है, वह उसी एकमात्र सत्ता की अभिव्यक्ति है। स्पिनोजा के अनुसार सत्ता में अनन्त गुण हैं, पर मनुष्य केवल दो को ही जान पाता है – विचार और विस्तार। यही गुण जगत की सभी वस्तुओं के रूप में प्रकट होते हैं। ईश्वर या आत्मनिर्भर है, उसका कोई कारण नहीं है, बल्कि वही सबका कारण है।

आचार्य शंकर और स्पिनोजा दोनों ने जगत के पीछे एक ही मूल तत्व स्वीकार किया। शंकर ने उसे ब्रह्म कहा और जगत को उसकी माया माना, जबकि स्पिनोजा ने उसे सत्ता (Substance) कहा और जगत को उसी का वास्तविक रूप। शंकर के लिए परम तत्व इन्द्रियातीत और आध्यात्मिक है, जबकि स्पिनोजा के लिए परम तत्व जगत में

व्याप्त है और तर्क से समझा जा सकता है। शंकर के अनुसार मुक्ति अज्ञान के नाश से आत्मा और ब्रह्म की अभिन्नता का अनुभव है, जबकि स्पिनोजा के अनुसार मुक्ति ज्ञान और विवेक से प्राप्त होने वाली शांति है।

इस प्रकार दोनों दार्शनिकों ने परम तत्व की एकता पर बल दिया, किन्तु उनकी व्याख्या के स्वरूप भिन्न हैं। शंकर का दृष्टिकोण दार्शनिक अध्यात्म पर आधारित है, जबकि स्पिनोजा का दृष्टिकोण तर्क और प्रकृति पर। दोनों ही यह मानते हैं कि अंतिम सत्य एक ही है और वही सम्पूर्ण जगत का आधार है।

आचार्य शंकर के अनुसार परम सत् की अवधारणा

भारतीय दर्शन परम्परा में आचार्य शंकर का नाम अत्यन्त गौरवशाली स्थान रखता है। वे अद्वैत वेदान्त के प्रवर्तक और भारतीय चिंतन की मुख्य धारा के प्रतिनिधि माने जाते हैं। शंकराचार्य ने अल्पायु में ही अपने दर्शन की ऐसी अमिट छाप छोड़ी कि उनके पश्चात् लगभग सभी दार्शनिक परम्पराएँ किसी न किसी रूप में उनके विचारों से प्रभावित हुईं। वे मात्र बत्तीस वर्ष की आयु तक जीवित रहे, किन्तु इस अल्प जीवनकाल में ही उन्होंने संन्यास ग्रहण कर अपने गुरु आचार्य गोविन्द से वेदान्त का गहन अध्ययन किया और भारतीय संस्कृति को नया जीवन प्रदान किया।

आचार्य शंकर का समस्त चिंतन 'ब्रह्म' की जिज्ञासा से प्रारम्भ होता है। उन्होंने 'ब्रह्मसूत्र' पर भाष्य किया, उपनिषदों और गीता पर विस्तृत टीकाएँ लिखीं। इसके अतिरिक्त विवेकचूड़ामणि, उपदेशसहस्त्री, अपरोक्षानुभूति, तत्वोपदेश आदि में उनके परमतत्व संबंधी विचार सुस्पष्ट रूप में मिलते हैं। वाचस्पति मिश्र के कथनानुसार जिज्ञासा संशय से उत्पन्न होती है और संशय विचार की ओर प्रेरित करता है। शंकराचार्य ने इसी विवेक-विचार की प्रक्रिया से अपने सिद्धान्तों का निर्माण किया।

शंकराचार्य ने परमतत्व को सच्चिदानन्द स्वरूप कहा। उनके अनुसार सत्य वही है जो स्वतंत्र, अविकारी और शाश्वत हो। यह ब्रह्म ही परम सत् है। वह न तो शून्य है, न ही केवल विचार मात्र का आकर्षण। वह ऐसा तत्व है जो स्वयं विद्यमान है और जिसके कारण सम्पूर्ण जगत अस्तित्व में है। ब्रह्म एकमात्र वास्तविक सत्ता है—अनादि, अनन्त और निर्विकार।

शंकर ने कहा कि जो कुछ जगत में दिखाई देता है वह परिवर्तनशील और नश्वर है। परिवर्तनशील वस्तुएँ वास्तविक सत् नहीं हो सकतीं। इसलिए जगत को उन्होंने 'माया' माना। माया ब्रह्म की शक्ति है, जिसके कारण यह दृश्य जगत हमें वास्तविक प्रतीत होता है। परन्तु वास्तविकता में यह ब्रह्म ही है जो सत् है, चित् है और आनन्दस्वरूप है। आचार्य शंकर का परमतत्व-दर्शन केवल बौद्धिक या तर्कपूर्ण चर्चा तक सीमित नहीं है, बल्कि उसका उद्देश्य आत्मा और ब्रह्म की एकता का अनुभव

कराना है। आत्मा और ब्रह्म अभिन्न हैं—इसी ज्ञान को मुक्ति कहा गया है। जब मनुष्य यह जान लेता है कि उसका वास्तविक स्वरूप ब्रह्म है, तब उसके लिए बंधन और मोक्ष की कल्पना समाप्त हो जाती है।

इस प्रकार आचार्य शंकर ने परम सत् की अवधारणा को सच्चिदानन्द ब्रह्म के रूप में प्रतिपादित किया। यह नित्य, अविनाशी और निरपेक्ष सत्ता है, जो न उत्पन्न होती है, न नष्ट होती है और न ही किसी परिवर्तन के अधीन है। यही भारतीय दर्शन में उनके अद्वैत वेदान्त का केन्द्रबिन्दु है।

शंकर के अनुसार ब्रह्म की अवधारणा

भारतीय दर्शन परम्परा में ब्रह्म की अवधारणा सर्वोपरि है। वेदों में सर्वप्रथम जिस तत्ववाद का उल्लेख मिलता है, उसका केन्द्र यही परम तत्व है। ऋग्वेद के नासदीय सूक्त में इस बात को स्पष्ट किया गया है कि यह सम्पूर्ण जगत् एक ही सत्य का विविध नामों में प्रकट रूप है। विद्वज्जन इसे भिन्न-भिन्न रूपों में पुकारते हैं, किन्तु उसका स्वरूप एक ही है।

सत् का वास्तविक अर्थ वही है जो अपरिवर्तनीय, स्वत:सिद्ध, अनन्त और स्वयं प्रमाण है। 'ब्रह्म' शब्द 'बृह्' धातु से बना है जिसका अर्थ है—वृद्धि करना, फैलना या उगना। आचार्य शंकर ने इस शब्द का शुद्ध अर्थ उद्घाटित करते हुए कहा कि अपनी महानता और व्यापकता के कारण यही ब्रह्म है। वेदों में इसी परम तत्व को 'ऋत' कहा गया है। ऋत का तात्पर्य है—व्यवस्था, नियम या वस्तुओं की कार्यविधि। यही विश्व का मूलभूत नियम है, जिसे पश्चिमी परम्परा में प्लेटो ने 'व्यापक नियम' (Universal Law) कहा।

उपनिषदों में प्रतिपादित ब्रह्म परम सत्य और परम तत्व है। यह शाश्वत, विशुद्ध और अविनाशी है। ऋग्वेद में ब्रह्म का प्रयोग स्तुति के रूप में हुआ है, वहीं अथर्ववेद में इसे यज्ञ के अर्थ में प्रयोग किया गया है। तैत्तिरीयोपनिषद में कहा गया है कि ब्रह्म वही है जिससे सभी प्राणी उत्पन्न होते हैं, जिसमें वे स्थित रहते हैं और अंत में जिसमें विलीन हो जाते हैं। उपनिषद इसे 'सत्यं, ज्ञानं, अनन्तं ब्रह्म' के रूप में परिभाषित करते हैं।

मैक्समूलर ने ब्रह्म की व्याख्या करते हुए कहा कि ब्रह्म वह विचार है जो शब्द के रूप में सृजन-शक्ति तथा भौतिक बल के रूप में उद्भूत हुआ। अन्य पाश्चात्य विद्वानों जैसे प्रो. ड्यूसन, हॉग, ब्रेण्ड, रॉथ, ओल्डेनबर्ग और भारतीय चिन्तकों जैसे डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन ने भी ब्रह्म शब्द की व्युत्पत्ति और अर्थ को लेकर विभिन्न मत प्रकट किए हैं।

आचार्य शंकर के अनुसार ब्रह्म महान, निरपेक्ष, स्वत: अस्तित्ववान और सम्पूर्ण सृष्टि का आधार है। उन्होंने ब्रह्म को ही तात्विक पदार्थ (Ultimate Reality)

माना। अद्वैत वेदान्त का केन्द्र-बिन्दु आत्मा और ब्रह्म की एकता है। शंकर ने उपनिषदों के वचनों के आधार पर इसे प्रतिपादित किया। उपनिषद कहते हैं—'एकमेवाद्वितीयम्' (केवल एक है, दूसरा नहीं), 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' (यह सब ब्रह्म ही है), 'नेह नानास्ति किंचन' (यहाँ कोई द्वैत नहीं है), 'आत्मा वा इदमेक एवाग्र आसीत्' (आदि में केवल आत्मा ही था)।

शंकर ने इन उपनिषद वचनों से सिद्ध किया कि ब्रह्म ही परम तत्व है। आत्मा और ब्रह्म में कोई भिन्नता नहीं है। संसार में जो विविधता दिखाई देती है, वह माया के कारण है। वास्तविक सत्य केवल ब्रह्म है, जो सच्चिदानन्द स्वरूप है।

आचार्य शंकर ने ब्रह्म का निरूपण दो प्रकार से किया है—विधि (सकारात्मक) और निषेध (नकारात्मक)। विधि रूप में ब्रह्म को समग्र जगत् का मूल कारण और स्रोत माना गया है। समस्त दृश्य और अदृश्य जगत उसी से उत्पन्न होता है और उसी में स्थित रहता है। यह सृष्टि का आधार और कारण होने के कारण ब्रह्म को वास्तविक सत् कहा गया है। निषेध रूप में शंकर ने उपनिषदों का अनुसरण करते हुए ब्रह्म का निरूपण 'नेति-नेति' अर्थात् 'ना यह, ना वह' के रूप में किया। उनका अभिप्राय यह था कि ब्रह्म का यथार्थ स्वरूप किसी विशेष गुण या परिभाषा में नहीं बाँधा जा सकता।

शंकर ने ब्रह्म को दो स्तरों पर विभाजित किया और बताया-

(1) निर्गुण, निर्विशेष, परब्रह्म :- यह वही ब्रह्म है जो अपने आप में है, जो पूर्णतया निरपेक्ष और पारमार्थिक है।

(2) सगुण, सविशेष, अपरब्रह्म :- यह वही ब्रह्म है जिसे हम अनुभव जगत से सम्बन्धित होने के कारण मानते हैं, जो गुणों और विशेषताओं से युक्त प्रतीत होता है।

निर्गुण ब्रह्म का निरूपण करते हुए शंकर ने इसे— नित्य, कूटस्थ और एकमेव बताया, सर्वदा एकरूप, भेदरहित और परिवर्तन रहित माना, पूर्णतया अपने स्वरूप में स्थित, ह्रास-वृद्धि से रहित और अनश्वर कहा, अदृश्य, अग्राह्य, गुणातीत, निरवयव, असंग और निर्विकार माना, देश-काल और कार्य-कारण से परे, अज, अव्यय, अविनाशी, अमृत और अभय बताया, पाप-पुण्य, भूत-वतज़्मान-भविष्य, भीतर-बाहर, कारण-कार्य सभी से परे बताया।

शंकर का मत है कि ब्रह्म इतना निरपेक्ष और अवर्णनीय है कि उसके ऊपर हमारे अनुभव की कोई भी उपाधि लागू नहीं की जा सकती। वह किसी जाति या विशेष की परिभाषा में नहीं आता, इसीलिए उसका निरूपण केवल 'नेति-नेति' से ही किया जा सकता है। उनके अनुसार ब्रह्म निरुपाधिक और असंग है। यही उसका पारमार्थिक स्वरूप है। ब्रह्म के अस्तित्व का प्रमाण हमारी अपनी अनुभूति है, क्योंकि हम अपने

अस्तित्व का निषेध नहीं कर सकते।

शंकर ने ब्रह्म को सच्चिदानन्द स्वरूप माना है। वह सत् (अस्तित्व), चित्त (चेतना) और आनन्द (आनन्दमय स्वरूप) है। वह अनन्त, निर्गुण और स्वयं में स्थित है।

अन्ततः शंकर के अनुसार ब्रह्म न तो केवल द्वैत है और न ही केवल अद्वैत, न सत् है और न असत्। वह अपने आप में वही है—जो है।

शंकराचार्य ने ब्रह्म और ईश्वर की व्याख्या में गहन और दार्शनिक दृष्टिकोण अपनाया है। प्रारम्भ में यह स्वीकार किया जाता है कि परम् सत् अर्थात् ब्रह्म अनिर्वचनीय है। यह शब्दों, तर्क और बुद्धि की सीमा से परे है। इसी कारण प्रो. ए.सी. बनर्जी यह कहते हैं कि यद्यपि परम् सत् का प्रत्यक्ष और यथार्थ स्वरूप शब्दों में व्यक्त नहीं किया जा सकता, तथापि उच्चतर चिन्तनभूमि पर हम उसका परोक्ष रूप से वर्णन कर सकते हैं। श्री चित्तसुखाचायज़ ने भी अपने ग्रन्थ 'प्रत्यक्तत्व प्रदीपिका' में यही कहा कि ब्रह्म ज्ञान का सामान्य विषय न होकर भी व्यवहार में प्रत्यक्ष स्वीकार्य है, इसलिए उसे प्रकाश योग्य माना जाना चाहिए।

उपनिषदों में ब्रह्म का स्वरूप प्रत्यक्ष साक्षात्कार का माना गया है। उपनिषद का आग्रह यह है कि ब्रह्म का अनुभव प्रत्यक्ष और अपरोक्ष हो। शंकराचार्य का कहना है कि आत्मा का स्वरूप प्रत्यक्ष या अनुमान जैसे सामान्य प्रमाणों से उपलब्ध नहीं होता; इसे जानने के लिए श्रुति का सहारा लेना आवश्यक है।

शंकर ने यह भेद स्पष्ट किया कि जब ब्रह्म माया से आच्छादित होता है, तब वह ईश्वर कहलाता है। यह ईश्वर ही जगत की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय का कारण है। ईश्वर जीव के पाप-पुण्य का फल देने वाला, सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान, सर्वव्यापक और नियन्ता है। साधकों के लिए यह ईश्वर ही उपास्य है, क्योंकि वही कर्मों का फल देता है और जीवों का मार्गदर्शन करता है।

इस दृष्टि से सगुण ब्रह्म का स्वरूप अत्यन्त महत्वपूर्ण हो जाता है। ब्रह्म जब माया के आवरण को धारण करता है, तभी सगुण ईश्वर के रूप में प्रकट होता है। वही जगत का रचयिता, पालनकर्ता और संहारक है। वह अन्तर्यामी है और अनन्त शक्ति से युक्त है। जगत की रचना वह किसी आवश्यकता से नहीं, बल्कि केवल अपनी लीला के रूप में करता है। ईश्वर के इस रूप का ज्ञान सगुण विद्या कहलाता है।

शंकराचार्य ने ब्रह्म के दो रूपों को माना है—निर्गुण और सगुण। निर्गुण ब्रह्म ही यथार्थ परब्रह्म है, जो निरुपाधि और निर्विशेष है। उसका कोई स्वरूप या विशेषता नहीं है, इसलिए वह केवल आत्मसाक्षात्कार द्वारा ही अनुभव किया जा सकता है। दूसरी ओर सगुण ब्रह्म अर्थात् ईश्वर माया से युक्त होकर व्यक्तित्वपूर्ण है, इसलिए उपासना का

विषय बन सकता है। यही ईश्वर धार्मिक भावनाओं को तृप्त करता है और नैतिकता का आधार प्रदान करता है। विद्यारण्य ने जीव और ईश्वर के सम्बन्ध को माया नामक कामधेनु के वत्सों के समान बताया है, जिससे यह स्पष्ट होता है कि माया ही जीव और ईश्वर की भिन्नता का कारण है।

शंकर के अनुसार निर्गुण ब्रह्म का स्वरूप हमारे धार्मिक और भावनात्मक जीवन को संतुष्ट नहीं करता, क्योंकि वह उपास्य नहीं बन सकता। इसके विपरीत ईश्वर, जो सगुण ब्रह्म है, उपासना योग्य है और जीव-जगत के सम्बन्धों का नियमन करता है। इस प्रकार सृष्टि को शंकराचार्य ने ईश्वर के स्वभाव का ही परिणाम माना है।

ईश्वर के विषय में शंकराचार्य के विचारों का साम्य पाश्चात्य दार्शनिकों— विशेषत: ब्रेडले और स्पिनोजा के विचारों से भी मिलता है। ब्रेडले ने भी परम सत्य को अन्तत: अव्याख्येय माना, जबकि स्पिनोजा ने ईश्वर को जगत का उपादान कारण स्वीकार किया। इस प्रकार शंकर की व्याख्या सार्वभौमिक दार्शनिक चिन्तन की कसौटी पर भी खरी उतरती है।

स्पिनोजा के दर्शन में परम तत्व की अवधारणा

स्पिनोजा सत्रहवीं शताब्दी के महान बुद्धिवादी दार्शनिकों में प्रमुख थे। उन पर देकार्ते की विधि का गहरा प्रभाव पड़ा। रसेल ने तो उन्हें देकार्ते का अनुयायी तक कह दिया है। किन्तु स्पिनोजा ने देकार्ते की विचार-परम्परा को नया रूप दिया। उन्होंने देकार्ते के द्वैतवाद को अद्वैतवाद में, ईश्वरवाद को सर्वेश्वरवाद में और क्रिया-प्रतिक्रिया सिद्धान्त को समानान्तरवाद में परिवर्तित कर दिया। स्पिनोजा में गणित के प्रति गहरी आस्था थी और उनके पूरे दर्शन में गणितीय कठोरता दिखाई देती है। उनकी प्रमुख कृति इथिक्स इसी गणितीय क्रम और प्रमाण पद्धति के आधार पर रची गई है।

स्पिनोजा के अनुसार परम तत्व द्रव्य है। वे कहते हैं— ''द्रव्य से मेरा अभिप्राय है वह जो अपने आप में है और अपने द्वारा ही चिन्तित होता है।'' अर्थात् ऐसी सत्ता जिसका अस्तित्व किसी अन्य सत्ता पर निर्भर न हो। इस प्रकार द्रव्य पूर्णत: स्वतन्त्र, स्वाभाविक और अनिवार्य सत्ता है। यही द्रव्य समस्त जगत् का आधार है।

वाल्फसन का मानना है कि स्पिनोजा के लिए ईश्वर प्रत्यक्ष ज्ञान का विषय है। वे द्रव्य को ही ईश्वर कहते हैं। द्रव्य स्वयं पर आधारित है, उसे अन्य किसी वस्तु की आवश्यकता नहीं होती। द्रव्य के गुणों में से स्पिनोजा ने चेतना और विस्तार को प्रमुख माना, किन्तु इन्हें द्रव्य नहीं बल्कि द्रव्य के गुण कहा। अर्थात् चेतना और विस्तार द्रव्य के दो रूप हैं जिनसे विश्व का सम्पूर्ण स्वरूप समझा जा सकता है।

स्पिनोजा ने अपने परमतत्व को 'सार्वभौमिक द्रव्य' के रूप में अभिहित किया। उन्होंने इसे शून्य या अभाव नहीं माना, बल्कि इसमें अनन्त सकारात्मक गुणों को

मान्यता दी। द्रव्य अथवा ईश्वर में अनन्त, असीमित और असंख्य गुण हैं और प्रत्येक गुण उसकी असीमता का परिचायक है। इस प्रकार ईश्वर को वे निर्गुण नहीं मानते, बल्कि सगुण मानते हैं। किन्तु यह 'गुण' ईश्वर को सीमित नहीं करता, अपितु उसकी असीमता का उद्घाटन करता है।

परम सत्ता का विवेचन करते हुए स्पिनोजा ने स्वरूप, लक्षण और विशेषण में भेद किया–

* **स्वरूप-गुण** – वे हैं जिन्हें हम ईश्वर की परिभाषा से तर्क द्वारा निकाल सकते हैं। जैसे—ईश्वर की सत्ता अनिवार्य है, वह अनन्त, अपरिवर्तनशील, शाश्वत है।

* **विशेषण** स्पिनोज़ा के यहाँ तकनीकी शब्द है, जिसका अर्थ वेदांत के उपाधि के निकट है। विश्व के विविध रूप उसी परम द्रव्य के विशेषण हैं।

स्पिनोज़ा ने उन सभी विशेषताओं को स्वीकार किया जो पारम्परिक ईश्वरवाद में कही जाती हैं। उनके अनुसार ईश्वर– एक है, पर यह 'एकत्व' है, न कि संख्या की इकाई। असीम है, और उसकी असीमता उसके अनन्त गुणों में प्रकट होती है, स्वयंभू है, अर्थात् उसका अस्तित्व अनिवार्य है, वह अपने आप में है और उसका न होना सोचा ही नहीं जा सकता। अजन्मा और अनादि है— 'न भूतः न भवितः न भूयः'। अतः वह कालातीत और शाश्वत है।

स्पिनोजा के दर्शन में परम सत्ता एक ऐसी शाश्वत, अनन्त और स्वयंभू सत्ता है जो जगत् से भिन्न नहीं है, बल्कि उसी के भीतर व्यक्त होती है। इसी कारण उनका दर्शन सर्वेश्वरवाद के नाम से प्रसिद्ध हुआ। उनके लिए ईश्वर जगत् का अलग स्रष्टा नहीं, बल्कि स्वयं जगत् ही ईश्वर का प्रत्यक्षीकरण है।

स्पिनोजा ने अपनी दार्शनिक प्रणाली में ईश्वर को कार्य-प्रकृति कहा है। अर्थात् ईश्वर वह है जिसके कारण से संपूर्ण जगत् की गति और क्रिया सम्भव होती है। उन्होंने ईश्वर के उन सभी लक्षणों को स्वीकार किया है जिन्हें सामान्यतः पारम्परिक ईश्वरवादी स्वीकार करते हैं—जैसे कि ईश्वर अनन्त है, शाश्वत है, स्वयंभू है, सर्वव्यापक है और सबका आधार है। किन्तु, मार्टिन्यू ने स्पिनोजा पर यह आरोप लगाया कि यद्यपि उन्होंने ईश्वर के लगभग सभी पारम्परिक गुण स्वीकार किए, पर दो बातें वे नहीं मानते— (1) ईश्वर को 'पुरुष या व्यक्ति' नहीं माना। (2) ईश्वर में 'इच्छा' नहीं मानी। मार्टिन्यू का तर्क था कि व्यक्तित्व और इच्छा अपूर्णता के सूचक हैं, जबकि स्पिनोजा का ईश्वर पूर्णता का द्योतक है। इसलिए उनका ईश्वर निरपेक्ष सत्ता है, किसी व्यक्तिवादी ईश्वर के समान नहीं।

स्पिनोजा के दर्शन की आलोचना करते हुए यह कहा गया कि यदि सर्वेश्वरवाद का अर्थ यह है कि प्रत्यक्ष जगत ही ईश्वर है, तो स्पिनोजा को सर्वेश्वरवादी कहना

अनुचित होगा। क्योंकि उनके मत में ईश्वर जगत् में निहित तो है, पर उससे परे भी है। वे ईश्वर को किसी भी परम्परागत ईश्वरवादी से कम पारलौकिक नहीं मानते। उनके दर्शन का एक और आलोचनात्मक पक्ष यह है कि जगत् विचार और विस्तार जैसे दो गुणों का ही विकास मात्र है और ईश्वर इन दोनों का केवल नाममात्र का योग है। लेकिन स्पिनोजा के अनुसार विचार और विस्तार स्वयं द्रव्य नहीं हैं, बल्कि द्रव्य के गुण हैं। वे द्वैत या अनेकत्व को स्वीकार नहीं करते। उनके अनुसार द्रव्य एकमात्र है, निर्विशेष है, और वही परम तत्व है।

स्पिनोज़ा ने इथिक्स के प्रथम भाग में गुण की परिभाषा दी है—''गुण वह है जिसे बुद्धि द्रव्य के स्वरूप के रूप में समझती है।'' द्रव्य निरपेक्ष और स्वतन्त्र होने के कारण बुद्धि की पकड़ में पूर्णतः नहीं आता, इसलिए स्पिनोजा ने उसे निर्गुण, निर्विशेष और अर्वचनीय कहा। लेकिन गुणों के कारण द्रव्य सविशेष और सगुण रूप में बुद्धिगोचर हो जाता है। इस प्रकार वास्तविकता में द्रव्य अनन्त गुणात्मक है, और वह असीम, अशेष तथा सर्वगुण सम्पन्न है।

यहीं पर एक दार्शनिक कठिनाई उत्पन्न होती है। यदि द्रव्य वास्तविकता में असीमित गुणों से युक्त है, तो यह अनन्तता हमारे अनुभव और बुद्धि की पकड़ में क्यों नहीं आती? इस प्रश्न पर भिन्न दार्शनिकों की भिन्न राय है—

* हेगेल और अडमान का मत था कि स्पिनोजा का द्रव्य वस्तुतः निर्गुण और अर्वचनीय है। गुणों को उन्होंने मानवीय बुद्धि की कल्पना मात्र माना।
* स्पिनोजा ने स्वयं भी गुणों को सापेक्षतया अनन्त कहा, जबकि द्रव्य को निरपेक्षतया अनन्त माना।

इससे यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि वस्तुतः द्रव्य में गुण नहीं हैं, बल्कि हमारी सविकल्प बुद्धि ने द्रव्य पर गुणों का आरोप कर दिया है। अर्थात् ईश्वर के स्वरूप और गुणों में भेद नहीं है। ईश्वर असीम और अपरिछिन्न है, और गुण उसी की सत्ता में अन्तर्निहित हैं।

स्पिनोजा की यह अभिकल्पना गहरी दार्शनिक कठिनाई को जन्म देती है। यदि द्रव्य निर्विशेष और अर्वचनीय है तो हम उसके गुणों की परिकल्पना कैसे करें? और यदि गुण वास्तव में हैं, तो वे द्रव्य से पृथक क्यों नहीं माने जाएँ? इस द्वन्द्व के कारण ही उनके दर्शन में बहस और आलोचना का विषय उत्पन्न हुआ।

प्रो. संगमलाल पाण्डे का कहना है कि स्पिनोजावाद की इति (अन्तिम परिणति) उसके प्रारम्भ से ठीक विपरीत है। आरम्भ में जहाँ स्पिनोजा ने परम सत्ता को एक अद्वितीय और निर्विशेष द्रव्य के रूप में प्रतिपादित किया, वहीं उसके आगे का तर्क बहुवाद की ओर झुकता प्रतीत होता है। यही कारण है कि जॉन केयर्ड ने यह मत प्रकट

किया कि स्पिनोजावाद अन्ततः बहुवाद में परिणत हो जाता है।

स्पिनोजा ने पर्यायों को द्रव्य अवश्य माना है, परन्तु यह स्पष्ट किया कि वे उसी अर्थ में द्रव्य नहीं हैं जिस अर्थ में ईश्वर द्रव्य है। इस बिन्दु को स्पष्ट करने के लिए उन्होंने दो दृष्टियाँ प्रस्तुत कीं—

(1) व्यावहारिक या अनित्य दृष्टि इस दृष्टि से सभी पर्याय (जीवात्माएँ, भौतिक वस्तुएँ, घटनाएँ) द्रव्य के रूप में ही दिखाई देते हैं। इस स्तर पर द्रव्य अनेक रूपों में प्रकट होता है।

(2) पारमार्थिक या नित्य दृष्टि :- इस दृष्टि से केवल ईश्वर या सार्वभौमिक द्रव्य ही वास्तविक है, पर्यांय मात्र उसके विशेषण हैं। वे स्वयं में स्वतन्त्र सत्ता नहीं रखते।

स्पिनोजा के अनुसार द्रव्य का ही विकास पयार्यों के रूप में दिखाई देता है। विशेषण से पयार्यों की उत्पत्ति होती है, सीधे द्रव्य से नहीं। इस अर्थ में द्रव्य ही उनका कारण है, क्योंकि विशेषण अपने अस्तित्व के लिए द्रव्य पर आश्रित हैं। स्पिनोजा ने स्पष्ट कहा कि—''मानवीय प्रकृति द्रव्यगत न होकर विकारगत है।'' इसका अर्थ यह है कि जो कुछ भी हम अपने अनुभव में देखते हैं, वह द्रव्य की शुद्ध सत्ता नहीं है, बल्कि उसका विकारी रूप है।

स्पिनोजा का द्रव्य, उनकी भाषा में, शुद्ध चेतना है। इस शुद्ध चेतना की तुलना भारतीय वेदान्त में ब्रह्म-चित्त, कान्ट के दर्शन में सप्रत्यय की संश्लिष्ट एकता, और एलेक्जेंडर के विचार में असीम प्रत्यय से की जा सकती है। यही कारण है कि स्पिनोजा को सर्वेश्वरवादी कहा जाता है। उनके मत में ईश्वर को छोड़कर शेष सब कुछ मिथ्या है। द्रव्य (ईश्वर) ही एकमात्र वास्तविकता है और अन्य सभी वस्तुएँ उसी में निहित होकर अपना स्वरूप खो देती हैं। इसी दृष्टि से हेगेल ने स्पिनोजा की आलोचना करते हुए कहा था कि—''स्पिनोजीय ईश्वर सिंह की वह मांद है जिसमें सभी वस्तुएँ प्रवेश तो करती हैं, परन्तु वहाँ से कोई भी वस्तु यथार्थ रूप में बाहर निकलकर दिखाई नहीं देती।''

इस आलोचना का आशय यह है कि स्पिनोजा की दार्शनिक प्रणाली में जगत् और व्यक्तियों की स्वतंत्र सत्ता लुप्त हो जाती है। सब कुछ ईश्वर के अनन्त द्रव्य में विलीन हो जाता है, और जगत की विविधता का कोई वास्तविक महत्व शेष नहीं रहता।

स्पिनोजा के अनुसार केवल ईश्वर ही वास्तविक सत्ता है। कारण और कार्य की भिन्नता को वह अस्वीकार करता है। जिस प्रकार तरंग सागर से पृथक सत्ता नहीं रखती, उसी प्रकार विश्व भी ईश्वर से पृथक सत्ता नहीं है। सम्पूर्ण सृष्टि ईश्वर में ही व्याप्त है और उसी से अपनी सत्ता ग्रहण करती है। यही विचार उसे सर्वेश्वरवादी दार्शनिक बनाता है।

स्पिनोजा का चिंतन उपनिषदों के अत्यन्त समीप बैठता है। उपनिषदों में जैसे ब्रह्म को ही एकमात्र सत्य कहा गया है और जगत् को उसी की अभिव्यक्ति, वैसे ही स्पिनोजा ने भी एक असीम द्रव्य ईश्वर को ही वास्तविक माना।

स्पिनोजीय सर्वेश्वरवाद में यद्यपि एकात्म सत्ता की स्थापना की गई है, तथापि विशिष्ट वस्तुओं की यथार्थता उसमें तिरोहित हो जाती है। इसलिए आलोचकों ने इसे 'शून्यात्मक एकता' कहा है। इसमें केवल 'लम्बरूपी एकता' है, अर्थात् सभी वस्तुएँ ईश्वर में लीन हैं; परंतु 'क्षैतिज एकता' का, यानी वस्तुओं की आपसी विविधता और स्वतंत्रता का, कोई यथार्थ स्थान नहीं है।

स्पिनोजा ने केवल ईश्वर की सत्ता को ही सत्य माना। इस दृष्टि से उसका सर्वेश्वरवाद अद्वैतवाद कहा जा सकता है। परंतु यह अद्वैत मानवीय स्वतंत्र इच्छा का निषेध करता है।

स्पिनोजा कहता है— जैसे त्रिभुज की परिभाषा से अनिवार्यतः यह निष्कर्ष निकलता है कि उसके तीन कोण मिलाकर दो समकोण के बराबर होंगे, उसी प्रकार विश्व और मानव की सारी क्रियाएँ भी ईश्वर से अनिवार्यतः उत्पन्न होती हैं। इनमें स्वतंत्रता की कोई गुंजाइश नहीं है।

प्रो. फिलन्ट के अनुसार, जब मानव को ईश्वर से पृथक स्वतंत्र सत्ता नहीं माना जाता, तो नैतिकता और अनैतिकता का भेद भी लुप्त हो जाता है। इसीलिए उनके शब्दों में— ''स्पिनोजा का सर्वेश्वरवाद न केवल एक अपर्याप्त धर्म है, बल्कि यह नैतिकता की नींव को ही उखाड़ देता है।''

दर्शन में निराशावाद धार्मिक चेतना के मार्ग में बाधा माना जाता है। स्पिनोजा का दर्शन, यद्यपि गहन है, परन्तु धार्मिक जीवन की वास्तविक समस्याओं का समाधान प्रस्तुत नहीं कर पाता। उसका ईश्वर दार्शनिक अमूर्तता तक सीमित रह जाता है, जो व्यक्ति के धार्मिक अनुभव को ठोस दिशा नहीं देता।

स्पिनोजा के अनुसार समस्त गुण और कार्य उस सार्वभौम द्रव्य से उसी प्रकार निकलते हैं, जिस प्रकार त्रिभुज की परिभाषा से उसके गुण (तीनों कोणों का योग दो समकोण होना) अनिवार्य रूप से निकलते हैं।

उस सार्वभौम द्रव्य (ईश्वर) के लिए कोई विशेषण नहीं दिया जा सकता, क्योंकि विशेषण देना उसकी असीमता को सीमित करना है।

स्पिनोज़ा कहता है— ''ईश्वर से मेरा आशय एक परम असीम सत्ता से है, अर्थात् ऐसा द्रव्य जो असीम गुणों में निहित है और जिनमें से प्रत्येक गुण नित्य एवं असीम सारतत्व की अभिव्यक्ति है।''

स्पिनोजा के अनुसार प्रत्येक पर्याय ईश्वर के गुणों का परिवर्तित स्वरूप है।

प्रत्येक इकाई सीमित और नियंत्रित है क्योंकि उसका कोई कारण है। वह कारण भी सीमित है और उसके पीछे कोई और कारण है। इस प्रकार कारणों की शृंखला अनन्त तक चलती जाती है। इस कारण–शृंखला की अन्तिम परिणति केवल ईश्वर में ही होती है।

स्पिनोजा की सम्पूर्ण ज्ञानमीमांसा मनस–तत्व पर आधारित है। उसके अनुसार मन ही वह साधन है जिसके द्वारा मनुष्य सत्य तक पहुँच सकता है। ज्ञान के विभिन्न स्तरों में अनुभवगत ज्ञान सबसे निम्न है क्योंकि यह इन्द्रियों के सहारे अपूर्ण और भ्रमात्मक होता है। तर्क अथवा विवेक पर आधारित ज्ञान उससे श्रेष्ठ है क्योंकि वह कारण–कार्य सम्बन्ध पर आधारित है। किन्तु सर्वोच्च और परम ज्ञान प्रज्ञा या बौद्धिक अंतर्ज्ञान है। यही अंतर्ज्ञान वस्तुओं को उनके शाश्वत स्वरूप में प्रकट करता है और यहीं से परमतत्व का बोध सम्भव होता है।

स्पिनोजा का ईश्वर अत्यन्त कठोर और निस्पृह है। वह धार्मिक परम्पराओं के ईश्वर की तरह मानव की करुण पुकार पर करुणा बरसाने वाला नहीं है। स्पिनोजा का ईश्वर किसी पर विशेष प्रेम नहीं करता, बल्कि वह तो केवल अपने ही असीम बौद्धिक प्रेम में स्थित है। मनुष्यों का आपसी प्रेम ही ईश्वर का प्रेम है। यहाँ ईश्वर भावनात्मक न होकर बौद्धिक और दार्शनिक सत्ता है।

स्पिनोजा के अनुसार ईश्वर अनादि, अनन्त, शाश्वत और अद्वैत सत्ता है। वह एकमात्र निरपेक्ष द्रव्य है। उसके अतिरिक्त कोई दूसरी सत्ता नहीं है। इसलिए सभी वस्तुएँ वास्तव में उसी का रूप हैं। सम्पूर्ण सृष्टि उसी सार्वभौम द्रव्य में स्थित है।

शंकराचार्य ने परम सत् को अनन्त, अखण्ड, एकरस और निर्गुण चैतन्य माना है। यह परम चैतन्य न ज्ञाता है, न ज्ञेय, बल्कि स्वयं सिद्ध है। उपनिषदों की भाषा में वही सच्चिदानन्द, भूमा और एकरस चैतन्य है। शंकराचार्य के अनुसार यही ब्रह्म वास्तविक सत्य है। किन्तु व्यवहारिक दृष्टि से शंकराचार्य ने दो स्तर माने हैं—

(1) निर्गुण ब्रह्म :- यह यथार्थ, परम सत्य है, निर्विकार और शाश्वत है।

(2) सगुण ब्रह्म :- जब वही निर्गुण ब्रह्म माया की उपाधि से युक्त होता है तब वह ईश्वर कहलाता है। यही ईश्वर उपास्य है, वही सृष्टि का कर्ता, पालक और संहर्ता है। जीवात्मा के लिए वही कर्मफल प्रदाता है।

अविद्या के कारण जीव का आभास है और माया के कारण ही जगत का अस्तित्व प्रतीत होता है। व्यावहारिक दृष्टि से जगत को सत्य माना जाता है किन्तु पारमार्थिक दृष्टि से ब्रह्म ही एकमात्र सत्य है।

स्पिनोजा और शंकराचार्य यद्यपि देश और काल की दृष्टि से भिन्न हैं, फिर भी उनके परम तत्व सम्बन्धी विचारों में कई आश्चर्यजनक साम्य मिलते हैं।

दोनों ने परम सत्ता को अनादि, अनन्त, शाश्वत और स्वयंभू माना। दोनों ने स्वीकार किया कि परम सत्ता ही जगत का आधार और कारण है। दोनों ने यह भी माना कि परम सत्ता को सीमित गुणों से बाँधना उसे सीमाबद्ध कर देना है। शंकराचार्य का निर्गुण ब्रह्म और स्पिनोजा का सार्वभौमिक द्रव्य दार्शनिक रूप से एक-दूसरे के निकट बैठते हैं।

फिर भी दोनों में कुछ मूलभूत अन्तर हैं—

* शंकराचार्य ने निर्गुण और सगुण ब्रह्म का भेद किया, जबकि स्पिनोजा ने केवल एक सार्वभौमिक द्रव्य माना।
* शंकराचार्य का ईश्वर भावनात्मक, उपास्य और कर्मफल दाता है; जबकि स्पिनोजा का ईश्वर कठोर, निस्पृह और केवल बौद्धिक सत्ता है।
* शंकराचार्य का दर्शन धार्मिक चेतना को पूर्ण आधार देता है, परन्तु स्पिनोजा का दर्शन मानव की करुण पुकार और नैतिक समस्याओं का समाधान नहीं कर पाता।

स्पिनोजा और शंकराचार्य दोनों ही इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि परम सत्ता एक अद्वितीय, स्वयंभू और निरपेक्ष तत्व है। शंकराचार्य ने उसे निर्गुण-सगुण ब्रह्म के द्वि-स्तर में व्याख्यायित किया। स्पिनोजा ने उसे सार्वभौमिक द्रव्य के रूप में प्रतिपादित किया। दोनों के विचारों में साम्य यह है कि वास्तविक सत्य केवल एक है और वही सम्पूर्ण जगत का आधार है। परन्तु भिन्नता यह है कि शंकराचार्य का ब्रह्म धार्मिक और आध्यात्मिक जीवन को आधार प्रदान करता है, जबकि स्पिनोजा का द्रव्य अधिक बौद्धिक और दार्शनिक सत्ता है।

मानव चिंतन का सर्वोच्च लक्ष्य परम तत्व की खोज है। पश्चिमी दशज़्न में स्पिनोजा तथा भारतीय दर्शन में शंकर, दोनों ने अपने-अपने दृष्टिकोण से परम तत्व की व्याख्या की है। यद्यपि इनके बीच काल, देश और सांस्कृतिक परिवेश का अन्तर है, फिर भी परम सत्य के संबंध में इनके विचारों में अद्‌भुत साम्य दृष्टिगोचर होता है।

स्पिनोजा ने अपने दर्शन में ईश्वर को शुद्ध सत् माना है। ईश्वर अनादि, अनन्त, अद्वितीय और स्वयंभू है। वही समस्त वस्तुओं का आधार है, और उसी पर जगत टिका हुआ है। स्पिनोजा के अनुसार ईश्वर पापियों का नाश नहीं करता, क्योंकि ऐसा करना उसकी निरपेक्षता और पूर्णता को कलंकित करेगा। उसका प्रेम अपने ही प्रति असीम बौद्धिक प्रेम है। जब मनुष्य एक-दूसरे से प्रेम करते हैं, तो वह ईश्वश्वरीय प्रेम का ही एक रूप है।

स्पिनोजा ने परम तत्व को सार्वभौमिक द्रव्य के रूप में स्वीकार किया है। यह द्रव्य अपने आप में पूर्ण और स्वतंत्र है। संसार की समस्त वस्तुएँ उसकी पर्याय मात्र हैं। जिस प्रकार समुद्र में उठने वाली तरंगें समुद्र से भिन्न नहीं होतीं, उसी प्रकार समस्त सृष्टि

द्रव्य से ही उत्पन्न होकर उसी में विलीन हो जाती है।

भारतीय वेदान्त परम्परा के महान आचार्य शंकर ने परम तत्व को निर्गुण ब्रह्म कहा है। यह ब्रह्म सच्चिदानन्द स्वरूप है—सत्, चित् और आनन्द का अभिन्न स्वरूप। यह स्वयंभू, अपरिवर्तनीय, शाश्वत और सर्वव्यापक है। शंकर के अनुसार ब्रह्म ही ज्ञाता और ज्ञेय दोनों से परे है। उपनिषदों की भाँति शंकर ने भी ब्रह्म को 'नेति-नेति' कहा—अर्थात् न यह है, न वह। परन्तु शंकर ने यह भी स्वीकार किया कि व्यावहारिक दृष्टि से ब्रह्म को सगुण ईश्वर माना जा सकता है। यह ईश्वर माया की उपाधि से युक्त है। माया की दो शक्तियाँ—आवरण और विक्षेप—जगत की उत्पत्ति का कारण बनती हैं। ईश्वर कर्मफल का दाता है और सृष्टि का कर्ता, पालक और संहारक है। पारमार्थिक दृष्टि से केवल निर्गुण ब्रह्म ही सत्य है, जबकि जगत माया के कारण मिथ्या है।

स्पिनोजा का मत है कि द्रव्य ही जगत का निमित्त और उपादान कारण है। काल और परिवर्तन केवल जगत में सत्य हैं, द्रव्य में नहीं। शंकर का मत है कि जगत ब्रह्म का विवर्त है। यह ब्रह्म की वास्तविक सत्ता नहीं, बल्कि अज्ञान और माया का अध्यास है। दोनों ही दार्शनिकों ने यह स्वीकार किया कि परम तत्व से भिन्न कोई स्वतंत्र सत्ता नहीं है।

शंकर के अनुसार मोक्ष का अर्थ है—अज्ञान की निवृत्ति। जब जीव यह जान लेता है कि वह वास्तव में ब्रह्म ही है, तब उसे परम आनन्द की प्राप्ति होती है।

स्पिनोजा के अनुसार मोक्ष का साधन है—बौद्धिक अंतर्दृष्टि। जब मनुष्य अंत:प्रज्ञा के आधार पर परम सत्य का अनुभव करता है, तभी उसे परमानन्द प्राप्त होता है।

स्पिनोजा ने इच्छा की स्वतंत्रता को अस्वीकार किया और माना कि मनुष्य की मुक्ति केवल बौद्धिक और आत्मिक उन्नति से संभव है।

स्पिनोजा ने ईश्वर प्रेम को अत्यंत मार्मिक ढंग से प्रस्तुत किया। उनके अनुसार जो व्यक्ति ईश्वर से प्रेम करता है, वह यह अपेक्षा नहीं करता कि ईश्वर भी उससे प्रेम करे। ईश्वर से प्रेम करने का अर्थ है—सत्य के साथ आत्मा का अभिन्न हो जाना।

शंकर ने भी कहा कि आत्मसाक्षात्कार ही मोक्ष है। अज्ञान दूर होते ही जीवात्मा और ब्रह्म में अभेद की अनुभूति होती है। यही अद्वैत अनुभव ही परम आनन्द है।

स्पिनोजी और शंकर में समानताएँ -

(1) दोनों ने परम तत्व को नित्य, अनादि, शाश्वत और स्वयंभू माना।

(2) जगत का आधार परम तत्व ही है।

(3) मोक्ष का स्वरूप आत्मसाक्षात्कार और परमानन्द है।

(4) काल और परिवर्तन परम तत्व में सत्य नहीं, केवल जगत में सत्य हैं।

असमानताएँ –

(1) शंकर ने माया सिद्धान्त प्रस्तुत किया, जबकि स्पिनोजा ने द्रव्य और पयार्यों का सिद्धान्त दिया।

(2) शंकर का ईश्वर दयालु और कर्मफल प्रदाता है, जबकि स्पिनोजा का ईश्वर कठोर और निरपेक्ष है।

(3) शंकर की पद्धति आध्यात्मिक एवं धार्मिक है, स्पिनोजा की दार्शनिक एवं तार्किक।

यद्यपि आचार्य शंकर और स्पिनोजा अलग-अलग परंपराओं के दार्शनिक हैं, परंतु दोनों के दर्शन में परम तत्व के विषय में आश्चर्यजनक साम्य मिलता है। शंकर का अद्वैत ब्रह्म और स्पिनोजा का सार्वभौमिक द्रव्य—दोनों ही एकमात्र नित्य, शाश्वत और स्वयंभू सत्य हैं। दोनों का लक्ष्य है—मानव को आत्मसाक्षात्कार और परम आनन्द की ओर अग्रसर करना।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि शंकर और स्पिनोजा, दोनों ने अपनी-अपनी संस्कृति और परंपरा की भाषा में एक ही सत्य की खोज की और पाया कि एक ही परम तत्व है, वही जगत का आधार है, वही मोक्ष का साधन है और वही मानव जीवन का परम लक्ष्य है।

❑❑❑